Smt. Hansa Mehta Library, M. S. University of Baroda

महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा की
पी-एच० डी० (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तावित
शोधप्रबंध की सार-संक्षेपिका

:: विषय ::

:: डॉ. भगवतीशरण मिश्र के उपन्यासों की भाषा : एक अनुशीलन ::

:: अनुसंधित्सु ::

अनसूया ए. पटेल
शोध-छात्रा, हिन्दी-विभाग,
म. स. विश्वविद्यालय, बड़ौदा

:: निर्देशक ::

डॉ. वामन वी. अहिरे
प्राचार्य, एम.के. अमीन आर्ट्स एण्ड साइंस कॉलेज
एण्ड कॉलेज ऑफ कॉमर्स, पादरा,
म.स. विश्वविद्यालय, बड़ौदा

वर्ष - २००५

Principal
M. K. Amin Arts & Science and
College of Commerce, PADRA.
(M.S University of Baroda)

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल अनेक दृष्टियों और विचारधाराओं के पहल का काल है। संस्कृत का गद्य तो समुन्नत था परन्तु हिन्दी में गद्य की अजस्रधारा का प्रवाह तो आधुनिक काल में ही दृष्टिगोचर होता है।आधुनिक काल से पूर्व आदिकाल तथा मध्यकाल में गद्य की कुछेक रचनाएँ ही प्राप्त होती हैं। जिसे हम खड़ी बोली गद्य कहते हैं उसका प्रादुर्भाव तो आधुनिककाल से पूर्व रामप्रसाद निरंजनी के 'भाषा योगवसिष्ठ' में दिखाई पड़ता है। उसके बाद लल्लुलाल गुजराती, पंडित सदलमिश्र, मुन्शी सदासुखलाल, मुन्शी इंशाअल्ला खां, राजा लक्ष्मणसिंह, राजा शिवप्रसादसितारे हिन्द, दयानन्द सरस्वती, भारतेन्दु तथा भारतेन्दु मण्डल के लेखक तथा महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे महानुभावों के प्रयत्नों के फलस्वरुप खड़ी बोली गद्य विकसित और परिपुष्ट होता गया है। आधुनिक काल में आकर पूरा समीकरण ही लगभग उलट गया है। आधुनिक काल से पूर्व जहाँ गद्य की रचनाएँ 0.001 प्रतिशत बमुश्किल थी वहाँ आधुनिक काल में गद्य और पद्य का परिमाण (Ratio) लगभग 70-30 प्रतिशत का रह जाता है। अर्थात् 70 प्रतिशत गद्य और 30 प्रतिशत पद्य। कदाचित् इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक काल को 'गद्यकाल' कहा है।

जब गद्य का आविर्भाव हुआ तो उसके साथ गद्य के कई साहित्य-प्रकार भी आएँ, जैसे उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, समालोचना, आत्मकथा, जीवनी, रेखाचित्र, संस्मरण, पत्र, डायरी, रिपोर्ताज आदि-आदि। गद्य के इतने रूप आधुनिक काल से पूर्व कही भी दृष्टिगत नहीं होते हैं।गद्य के विकास के साथ ही साथ पत्र-पत्रिकाओं का भी विकास होता है और उनके माध्यम से कई प्रकार की विचारधाराएँ सामने आती हैं, इसीलिए ही आरम्भ में हमने कहा था कि आधुनिक काल अनेक आयामों की पहल का काल है।

नवजागरण काल में जो सामाजिक-धार्मिक-राजनीतिक आंदोलन हुए, उनके कारण हजारों वर्षों से सोये भारतीय समाज ने करवट ली। शिक्षित और विद्वान लोग नए सिरे से भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म पर विचार-विमर्श करने लगे। इन महानुभावों में राजाराम मोहनराय, केशवचंद्र सेन, इश्वरचन्द्र विद्यासागर, दयानन्द सरस्वती, महादेव गोविंद रानडे, ज्योतिबा फुले, महात्मा गाँधी, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टेगोर, डॉ. बाबासाहब अम्बड़कर आदि मुख्य है। इनके वैचारिक मंथन से भारतीय समाज को अनेक नए मुद्दे मिले हैं, जैसे नारी-विमर्श, दलित-विमर्श, देश की स्वतंत्रता, नारी शिक्षा का प्रचार, अछूतोद्धार, हरिजनों का मन्दिर प्रवेश, जातिप्रथा का विरोध, दहेज-प्रथा का विरोध, वृद्ध विवाह

का विरोध, शिशु-विवाह का विरोध, विदेशी कपड़ा तथा चीज वस्तुओं का विरोध, राष्ट्रीयता की भावना, राष्ट्रीय अखण्डता की विभावना, हिन्दू-मुस्लीम एकता की विभावना। इसके फलस्वरुप हमारा सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक जीवन अनेक हलचलों से भर गया।

समाज के इस नए यथार्थबोध को रूपायित करने के लिए एक नए साहित्य-स्वरूप की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। उपन्यास विधा का जन्म इसी आवश्यकता की पूर्ति हेतु हुआ। लगभग सभी भारतीय भाषाओं में उपन्यास का आविर्भाव 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से माना जाता है। आर्यसमाजी पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी द्वारा प्रणीत हिन्दी का प्रथम उपन्यास 'भाग्यवती' सन् 1878 में प्रकाशित हुआ था। इस हिसाब से हिन्दी उपन्यास को लगभग सवासौ साल हुऐ हैं। इन सौ-सवासौ वर्षों में हिन्दी उपन्यास ने आशातीत रूप से प्रगति की है। पूर्व प्रेमचन्दकाल का उपन्यास अपरिपक्व, बोधप्रधान, कथावस्तु प्रधान और एक आयामी था। हिन्दी उपन्यास को उसका वास्तविक गौरव मुन्शी प्रेमचन्द ने प्रदान किया। मुन्शी प्रेमचन्द का हिन्दी में प्रादुर्भाव सन् 1918 से माना जाता है। अतः सन् 1918 से 1936 तक का कालखण्ड हिन्दी कथा-साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द्र युग से जाना जाता है। प्रेमचन्द युग में प्रायः हमें दो प्रकार के उपन्यास मिलते हैं - सामाजिक और ऐतिहासिक। सामाजिक समस्यामूलक चरित्रप्रधान उपन्यासों का सूत्रपात जहाँ मुन्शी प्रेमचन्द द्वारा हुआ है वहाँ ऐतिहासिक उपन्यासों का सूत्रपात सर्वश्री वृन्दावनलाल वर्मा द्वारा होता है। प्रेमचन्दोत्तर काल में उपर्युक्त सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासों के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक उपन्यास, समाजवादी उपन्यास, आँचलिक उपन्यास, राजनीतिक उपन्यास, पौराणिक उपन्यास, व्यंग्य उपन्यास जैसी औपन्यासिक प्रवृत्तियाँ उपलब्ध होती हैं। समाजवादी उपन्यास मार्क्सवादी विचारधारा को केन्द्रस्थ रखते हुए चले हैं तो मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में फ्रायड, एडलर, युंग, पावलोव, जीन पायागेट प्रभृति मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्तों को आधार बनाते हुए प्रायः मनुष्य के अचेतन मन (unconcious mind) को थाहने का प्रयास हुआ है। राजनीतिक उपन्यासों में राजनीतिक सिद्धान्तों, राजनीतिक पार्टियों तथा उनकी विचारधाराओं को केन्द्रस्थ किया गया है। आँचलिक उपन्यासों में किसी अंचल विशेष को उसकी समग्रता के साथ प्रस्तुतकिया जाता है। फणीश्वरनाथ रेणु कृत 'मेला आँचल' आँचलिक उपन्यासों के मॉडेल को प्रस्तुत करता है। पौराणिक उपन्यासों में पौराणिक कथानकों की आधुनिक सन्दर्भ में मूल्यांकित करने का प्रयत्न हुआ है। स्वतंत्रता के पश्चात् हमारे

सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, शैक्षिक जीवन में अनेक प्रकार की विसंगतताएँ और विद्रूपताएँ पैदा हुई हैं। जीवन का कोई क्षेत्र भ्रष्टाचार, कदाचार, नग्नता और अश्लीलता से अछूता नहीं रहा है। फलतः साहित्य की सभी विधाओं में व्यंग्यात्मकता के तेवर दिखाई पड़ते हैं। उपन्यास में जहाँ पहले छिट-पुट व्यंग्य मिलता था, वहाँ अब समूचा उपन्यास व्यंग्यात्मक रूपबंध में मिलता है। श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' उसका एक अनोखा प्रतिमान है।

हमारे आलोच्य उपन्यासकार डॉ. भगवतीशरण मिश्र हिन्दी औपन्यासिक परम्परा में कुछ अलग पड़ते हैं। अलग इन अर्थों में कि जहाँ लगभग समूची औपन्यासिक परम्परा वाममार्गी विचारों की ओर अधिक आकृष्ट हुई है वहाँ डॉ. मिश्र कुछ-कुछ दक्षिण पंथी विचारधारा से ताल्लुक रखते हैं। हिन्दी के अधिकांश उपन्यासों में जहाँ मन्दिरों, मठों, आश्रमों तथा सम्प्रदायों और उनके मठाधीशों पर प्रहार किए गये हैं। उनमें व्याप्त भ्रष्टाचार को बेपर्द किया गया है, वहाँ डॉ. मिश्र इन मन्दिरों और मठों के प्रति बहुत ज्यादा आस्थावान दिखाई देते हैं। उनका शायद ही कोई ऐसा उपन्यास मिलेगा जिसमें मन्दिर और मन्दिर से जुड़ी हुई चमत्कारिक घटनाओं के आख्यान नहीं होंगे। नागार्जुन का 'इमरतिया' उपन्यास तो पूर्णरूपेण मन्दिरों और मठों में व्याप्त भ्रष्टाचार और कदाचार को लेकर लिखा गया है। मन्दिरों और मठों में सब कुछ बुरा नहीं होता। उसके कुछ सकारात्मक पहलू भी होते हैं। डॉ. मिश्र इस सकारात्मक पक्ष को लेकर चले हैं। इस अर्थ में वे अन्य उपन्यासकारों से कुछ अलग पड़ते हैं। डॉ. मिश्र के उपन्यासों में हमें चार औपन्यासिक प्रवृत्तियाँ मिलती हैं - सामाजिक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, पौराणिक उपन्यास तथा चमत्कार प्रधान तिलस्मी उपन्यास । उनके सामाजिक उपन्यासों में 'सूरज के आने तक', 'नदी नहीं मुड़ती', 'एक और अहल्या' तथा 'लक्ष्मण-रेखा' आदि मुख्य है। डॉ. मिश्र आई.ए.एस. ऑफिसर थे और बिहार तथा भारत सरकार की विभिन्न योजनाओं में उच्चपदाधिकारी रह चुके हैं। यहाँ 'थे' इसीलिए कहा गया है कि सम्प्रति भारत सरकार की प्रशासनिक सेवाओं से वे निवृत्त हो चुके हैं। उपर्युक्त उपन्यासों में उनके प्रशासनिक अनुभवों को देखा जा सकता है। उनका 'लक्ष्मण-रेखा' उपन्यास पर्यावरण जैसे नए विषय पर आधारित है। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में 'पीताम्बरा', 'पहला सूरज', 'देख कबीरा रोया', 'का के लागूं पांव', 'गोबिन्द गाथा' और 'शान्तिदूत' आदि की गणना कर सकते हैं, जो क्रमशः मीराबाई, छत्रपति शिवाजी, कबीर, गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविंदसिंह तथा महात्मा गाँधी के जीवन-वृत्तान्त पर आधारित है।

'का के लागूं पांव' में गुरु तेगबहादुर तथा गुरु गोविन्दसिंह उभय की कथा मिलती है। उसमें गुरु तेगबहादुर के उदय और संघर्ष की गाथा के साथ-साथ गुरु गोविन्दसिंह के जन्म से लेकर युवावस्था तक की कथा को लिया गया है। 'शान्तिदूत' में निकट अतीत के इतिहास को लिया जाने के कारण कोई चाहे तो इसे राजनीतिक उपन्यास की कोटि में भी रख सकता है। डॉ. मिश्र के पौराणिक उपन्यासों में 'पवनपुत्र', 'प्रथम पुरुष' और पुरुषोत्तम' आदि है, जो क्रमशः रामायण, भागवत तथा महाभारत और महाभारत के पौराणिक वृतान्तों पर आधारित हैं। डॉ. मिश्र का 'बंधक आत्माएँ' उपर्युक्त सभी प्रकार के उपन्यासों में भिन्न पड़ता है क्योंकि उसमें ओमकाली बाबा नामक एक चमत्कारी बाबा को कथा-केन्द्र में रखा गया है। उसमें बाबा से जुड़ी हुई चमत्कारपूर्ण घटनाएँ तिलस्मी कहानियों-सी प्रतीत होती है, हालांकि लेखक ने कहीं-कहीं उन चमत्कारों की वैज्ञानिक व्याख्या करने का यत्न भी किया है। प्रस्तुत उपन्यास लेखकने संस्मरणात्मक ढंग से लिखा है, अतः लेखक स्वयं उनमें निरूपित अनेक चमत्कारी घटनाओं के साक्ष्य रहे हैं।

डॉ. नरेन्द्र कोहली ने भी रामायण और महाभारत को आधार बनाते हुए दो उपन्यास मालाओं का सृजन किया है, परन्तु डॉ. कोहली और डॉ. मिश्र के पौराणिक उपन्यासों में मूलभुत अन्तर यह है कि जहाँ डॉ. कोहली ने पौराणिक आख्यानों की चमत्कारपूर्ण घटनाओं की आधुनिक तथा वैज्ञानिक अर्थघटन किया है, वहाँ डॉ. मिश्र ने अनेक स्थानों पर उन चमत्कारों का यथावत वर्णन किया है।

डॉ. मिश्र के औपन्यासिक साहित्य पर महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अन्तर्गत प्रो. पारुकांत देसाई के निर्देशन में डॉ. इला मिस्त्री अपना शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत कर चुकी है, परन्तु मेरा विषय उनसे भिन्न है क्योंकि मैंने डॉ. मिश्र के उपन्यासों में निरुपित भाषा को अपने शोध का लक्ष्य बनाया है। यह तो सर्वविदित तथ्य है कि उपन्यास गद्य की विधा है और उसमें प्रयुक्त गद्य-भाषा का एक विशिष्ट महत्व होता है। लगभग तमाम-तमाम औपन्यासिक आलोचकों ने उपन्यास के तत्वों के रुप में भाषा-शैली के तत्व को अंगीकृत किया है। पाश्चात्य औपन्यासिक आलोचना में शीर्षस्थ कहे जानेवाले राल्फ फॉक्स, ईरा वाल्फर्ट तथा इवान वाट जैसे महानुभावों ने उपन्यास में भाषा के महत्व को विशेष रुप से रेखांकित किया है। राल्फ फॉक्स तो उपन्यास को मानव जीवन का गद्य तक कहते है। अतः मैंने डॉ. मिश्र की औपन्यासिक भाषा को अपने अध्ययन-अनुसंधान का विषय बनाया है।

चूंकि मेरा कार्य डॉ. मिश्र के उपन्यासों की भाषा पर है, प्रथम अध्याय में मैंने

उपन्यास से सन्दर्भित कुछ आयामों को लिया है, जैसे- उपन्यास और गद्य, चरित्र-चित्रण में भाषा का योग, उपन्यास में निरूपित जीवन-दर्शन और भाषा, उपन्यास में भाषा की बहुस्तरीयता आदि-आदि। किसी भी लेखक की भाषा और उसकी प्रकृति और संस्कार के पीछे लेखक का अपना व्यक्तित्व भी उत्तरदायी होता है, अतः विषय-प्रवेश के अध्याय में ही मैंने डॉ. मिश्र की जीवन यात्रा को बहुत संक्षेप में वर्णित किया है। उसमें हमने उनके जीवन-संघर्ष, शिक्षा-दीक्षा, प्रशासनिक सेवा, प्रारम्भिक साहित्यिक संस्कार तथा उनके कृतित्व का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। डॉ. मिश्र एक विकसनशील एवं सक्रिय लेखक के रुप में हमारे सामने आते हैं। उनका लेखन कार्य अब भी चल रहा है, बल्कि निवृत्ति के कारण उसमें और वृद्धि देखी जा सकती है। प्रस्तुत अध्याय में हमने लेखक की भाषा विषयक अवधारणा को भी स्पष्ट किया है।

द्वितीय अध्याय में हमने डॉ. मिश्र की औपन्यासिक भाषा को उनकी कथावस्तु के निकष पर परखने का प्रयत्न किया है। उपन्यास का रूपबंध (Form) उसकी भाषा को भी प्रभावित करता है। सामाजिक ऐतिहासिक वा पौराणिक उपन्यासों में देश काल की दृष्टि से भाषा के अलग-अलग स्तर मिल सकते हैं, बल्कि उपन्यास की यथार्थधर्मिता को देखते हुए भाषा के अलग-अलग स्तर मिलने चाहिए, अतएव इस अध्याय में हमने डॉ. मिश्र के उपन्यासों का वर्गीकरण भी प्रस्तुत किया है। सामाजिक उपन्यासों के अंतर्गत 'नदी नहीं मुड़ती', 'सूरज के आने तक', 'एक और अहल्या', 'लक्ष्मण-रेखा', ऐतिहासिक उपन्यासों में 'पहला सूरज', 'पीतांबरा', 'देख कबीरा रोया', 'का के लागू पांव', 'गोबिन्द गाथा' तथा 'शान्तिदूत' पौराणिक उपन्यासों में 'पवनपुत्र', 'प्रथम पुरुष', तथा 'पुरुषोत्तम', चमत्कार प्रधान उपन्यासों में 'बंधक आत्माएँ' आदि उपन्यासों की भाषा को उनकी कथावस्तु के परिप्रेक्ष्य में देखा गया है। इस अध्ययन के द्वारा अनुसंधित्सु इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि डॉ. मिश्र ने सामाजिक उपन्यासों में प्रायः समसामयिक भाषा का प्रयोग किया है। उपन्यास की कथावस्तु जिस प्रकार के समाज पर आधारित है उसके अनुरुप भाषा का प्रयोग हुआ है। तथापि जहाँ तक लेखकीय भाषा का सवाल है, उसमें संस्कृत तत्सम शब्दावली युक्त भाषा अधिक पाई गई है। ऐतिहासिक तथा पौराणिक उपन्यासों की भाषा देशकाल के अनुरुप है। चमत्कारिक एवं आध्यात्मिक अनुभवों से युक्त उपन्यास में समसामयिक भाषा के अतिरिक्त तन्त्र-मन्त्र, योग-साधना तथा अध्यात्म से जुड़ी हुई शब्दावली पाई जाती है। डॉ. मिश्र के उपन्यासों में कथावस्तु के अनुरुप तत्सम-संस्कृत, तद्भव, देशज शब्द, अरबी-फारसी या उर्दू के शब्द, अंग्रेजी शब्द पंजाबी, बंगाली तथा

प्रसंगानुरूप भोजपुरी, अवधि के शब्द भी पाए जाते हैं। व्युत्पत्तिशास्त्र (Etymology) की दृष्टि से भी डॉ. मिश्र के उपन्यासों की भाषा रसप्रद सिद्ध हो सकती है।

उपन्यास कथा साहित्य का प्रकार है, अतः कथावस्तु तो उसमें रहेगी ही, किन्तु ये कथावस्तु पात्रों का सहारा लेकर आगे विकसित होती है। बिना पात्रों के कथावस्तु हो ही नहीं सकती। जिस प्रकार इस संसार का स्रष्टा विभिन्न पशु-पक्षियों और मनुष्यों की सृष्टि करता है, ठीक उसी प्रकार उपन्यासकार भी कथावस्तु के अनुरूप पात्रों की सृष्टि करता है। पात्रों की सृष्टि करते समय, जैसा कि ईरा वाल्फर्ट ने बताया है भाषा का स्वरूप बोलचाल की भाषा, लोगों की भाषा अर्थात् Spoken Language का हो जाता है। यहाँ पर ही लेखक की कसौटी होती है क्योंकि लेखकीय भाषा से यहाँ काम नहीं चलेगा। यहाँ तो लेखक को पात्रों की भाषा तक पहुँचना होगा। हमने अपने अध्ययन और अनुसंधान के दौरान यह तय पाया कि डॉ. मिश्र इस कसौटी पर खरे उतरे हैं। जिस प्रकार किसी फोटो या दृश्य को मढ़ने के लिए उसके अनुरुप फ्रेम चाहिए ठीक उसी तरह कथावस्तु और पात्रों के अनुरूप परिवेशरुपी फ्रेम का होना अत्यंत आवश्यक है। यथार्थ परिवेश के निर्माण में दो बातों को विशेष ध्यानार्ह रखा जाता है - देश और काल अर्थात् स्थान, प्रदेश और समय विशेष। इन दोनों से परिवेश या वातावरण का निर्माण होता है परन्तु यहाँ भी इस परिवेश निर्माण की प्रक्रिया में लेखक को भाषा का सविशेष ध्यान रखना होगा। यथार्थ परिवेश का निर्माण उपन्यास की सफलता-असफलता में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। अतः परिवेश के अनुरुप भाषा को भी विभिन्न स्तरों से गुजरना होता है और हम कह सकते हैं कि डॉ. मिश्र यहाँ सफल रहे हैं। इस तृतीय अओध्याय में इन्हीं सब मुद्दों को लिया गया है।

उपन्यास में कथावस्तु, पात्र, परिवेश आदि अलग-अलग तत्व होते हैं परन्तु इन सभी के सम्यक् निर्वाह के लिए लेखक के पास जो साधन होता है वह तो भाषा का ही है। उपन्यास में यथार्थ के निर्माण हेतु लेखक को पात्र और परिवेश की भाषा में जाना पड़ता है। लेखक यदि पात्रानुरूप भाषा का प्रयोग नहीं करेगा तो उसके द्वारा निरुपित पात्र-सृष्टि अवास्तविक, असाहजिक और वायवी लंग सकती है। पात्र की भाँति अलग-अलग रुपबंधो के अनुसार परिवेश की भाषा में भी एक निश्चित अन्तर मिलेगा। समसामयिक सामाजिक उपन्यासों की भाषा से ऐतिहासिक और पौराणिक उपन्यासों की भाषा में एक निश्चित परिवर्तन मिलता है। इन्हीं सब मुद्दों को लेकर तृतीय अध्याय की रचना हुई है। डॉ. मिश्र के उपन्यासों में विभिन्न वर्ग, वर्ण, जाति

और व्यवसाय के पात्र मिलते हैं और यथासम्भव लेखक ने पात्रानुरुप भाषा का प्रयोग किया है तथापि उनकी भाषा में संस्कृत प्रचुर शब्दावली उपलब्ध होती है। किन्तु लेखक ने इस बात का ध्यान रखा है कि ऐसी भाषा का प्रयोग प्रायः शिक्षित और संस्कृत के जानकार पात्रों के द्वारा हुआ है। ऐतिहासिक और पौराणिक परिवेशयुक्त उपन्यासों में भाषा का तदनुरुप प्रयोग हुआ है। परिवेश की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए डॉ. मिश्र ने तत्सम, तद्भव, देशज शब्दों के अतिरिक्त अंग्रेजी, बंगाली, भोजपुरी, राजस्थानी, पंजाबी आदि भाषाओं के शब्द मिलते हैं। अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि डॉ. मिश्र ने हिन्दी के शब्द-संपन्ना कोश को एक सीमा तक समृद्ध किया है।

शब्द भाषा की सबसे छोटी सार्थक इकाई है। चतुर्थ अध्याय में डॉ. मिश्र के उपन्यासों में जो शब्द पाए जाते हैं, उनका अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यहाँ संस्कृत तत्सम, तद्भव, देशज शब्द, अरबी-फारसी या उर्दू शब्द, अंग्रेजी शब्द, अंग्रेजी के शब्द जो परिवर्तिक व्याकरणिक रुप में मिलते हैं, अंग्रेजी - हिन्दी मिश्रित शब्द ; पंजाबी, बंगाली, भोजपुरी, राजस्थानी, अवधि, मैथिली, गुजराती आदि भाषाओं और बोलियों के शब्द; अनूदित शब्द, वर्णमैत्री युक्त शब्द, ध्वन्यात्मक शब्द, दृश्यात्मक शब्द, क्रियावाची शब्द, नामधातु क्रियावाची शब्द; प्रेरणार्थक क्रियावाची शब्द, भाववाचक संज्ञाएँ, ध्वनि-पुनरावर्तन वाले शब्द, युग्म शब्द आदि शब्दों की विभिन्न कोटियों को लेकर अनुसंधानपरक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत अध्याय में नए रुपक, नए विशेषण, विशेषण पदबंध, नए उपमान इत्यादि पर भी विचार किया गया है। इसके अतिरिक्त, व्यक्ति, स्थल, पेड़-पौंधे, पुष्प, चीज-वस्तु पशु-पक्षी एवं प्राणी, विभिन्न विषयों से सम्बन्धित शब्द, विशिष्ट शब्द तथा आधुनिक सभ्यता जुड़े हुए शब्दों को भी यहाँ विश्लेषित किया गया है।

पाँचवा अध्याय 'वाक्य विचार' से सम्बद्ध है। इसके अंतर्गत वाक्य की परिभाषा देते हुए वाक्य के विभिन्न प्रकारों की सोदाहरण चर्चा डॉ. मिश्र के उपन्यासों के सन्दर्भ में हुई है। यहाँ वर्णमैत्री युक्त वाक्य, प्रोक्ति, मुहावरे, कहावते, नए मुहावरे और कहावतें, सांगरुपक से युक्त वाक्य, उद्धरण जैसे वाक्य से सम्बद्ध और वाक्य-खण्ड से जुड़े हुए मुद्दों की पड़ताल की गई है। वाक्य के रचनानुसार, क्रियानुसार, अर्थ या भाव के अनुसार तथा शैली के अनुसार जो कई भेद बनते हैं प्रायः उन सभी का प्रयोग डॉ. मिश्र के उपन्यासों में हुआ है। लेखक आलंकारिक शैली लिखने में सिद्धहस्त हैं अतः उनके उपन्यासों में कई स्थानों पर वर्णमैत्री युक्त वाक्य मिलते हैं।

डॉ. मिश्र प्रोक्ति के भी सिद्धहस्त और कुशल लेखक है। उनके उपन्यासों में अनेक प्रोक्तियाँ मिल जाती है जिनमें एक ही पंक्ति को उठा ली जाए तो सारी प्रोक्ति चरमरा जाती है। डॉ. मिश्र के उपन्यासों में न केवल मुहावरों और कहावतो का साभिप्राय प्रयोग मिलता है बल्कि कहीं-कहीं उन्होंने कहावतों और मुहावरों को नवीन ढंग से प्रस्तुत भी किया है शैली के कारण उनके उपन्यासों में उपमा, मालोपमा, मानवीकरण, उत्प्रेक्षा, सांगरुपक जैसे अलंकार भी मिलते हैं। किसी अच्छे सिद्धहस्त लेखक में सूक्तियों का प्रयोग उसके चिन्तन पक्ष को पाठकों के समक्ष उद्घाटित करता है। डॉ. मिश्र के उपन्यासों में सूक्तियों का प्रमाण भी प्रचुर मात्रा में मिलता है। उनके उपन्यासों में संस्कृत, बंगला, मैथिली, गुजराती, अंग्रेजी, ब्रज, अवधि तथा हिन्दी के अनेक उद्धरण प्राप्त होते हैं जिससे उनकी बहुपठितता और बहुज्ञता ज्ञापित होती है।

छठे अध्याय में डॉ. भगवतीशरण मिश्र की औपन्यासिक भाषा-शैली के कतिपय अभिलक्षणों को उद्घाटित किया गया है। डॉ. मिश्र के उपन्यासों में प्रयुक्त विभिन्न शैलियाँ-जैसे, वर्णनात्मक शैली, व्यास शैली, समास शैली, आलंकारिक शैली, तर्कयुक्त गम्भीर शैली, प्रश्न शैली, चिन्तनप्रधान शैली, तरंगशैली, धाराप्रवाह शैली, परिगणनात्मक शैली, प्रश्नोत्तर शैली, उद्धरण शैली, व्यंग्य शैली, सरल-सुबोध शैली, संस्कृतनिष्ठ शैली, अरबी-फारसी वाली शैली, अंग्रेजी प्रधान शैली, आंचलिक शैली उपलब्ध होती हैं। यहाँ उनके उपन्यासों के सन्दर्भ में इनकी सोदाहरण चर्चा की गई है। प्रस्तुत अध्याय में डॉ. मिश्र की औपन्यासिक गद्य-शैली की कतिपय विशेषताओं को भी उकेरा गया है, जिनमें सार्थक कथोपकथन, बहुश्रुतता, संक्षिप्तता, सांकेतिकता, नवीन भाषाभिव्यंजना, प्रतीकात्मकता आदि का उल्लेख किया जा सकता है। यहाँ पर डॉ. मिश्र के औपन्यासिक गद्य शैली की कतिपय मर्यादाओं और सीमाओं को भी अंकित किया गया है।

अध्ययन के समग्रावलोकन से इतना तो सहजतया कहा जा सकता है कि डॉ. भगवतीशरण मिश्र हिन्दी के एक विशिष्ट शैलीकार है और उन्होंने अपने उपन्यासों के द्वारा हिन्दी भाषा और उसके शब्द-भंडार को काफी समृद्ध किया है।

हमारा यह शोध-कार्य डॉ. भगवतीशरण मिश्र के उपन्यासों की भाषा से सम्बद्ध है। इस प्रकार हिन्दी के अन्य समर्थ उपन्यासकारों की भाषा को लेकर भी शोध-कार्य हो सकता है। जहाँ तक मैं जानती हूँ हमारे विश्वविद्यालय में ही शैलेश मटियानी के उपन्यासों की भाषा पर शोध-कार्य हो रहा है। जो उपन्यासकार-कहानीकार भी है, उनकी कहानियों को लेकर भी इस प्रकार का कार्य हो सकता है।

डॉ. भगवतीशरण मिश्र के उपन्यासों का शैली-तात्विक अध्ययन भी हो सकता है।

पी.एच.डी. उपाधि हेतु किया गया शोध-कार्य शोध, अनुसंधान और साहित्य-समालोचना की दिशा में उठाया गया प्रथम कदम है, किसी ने कहा है कि कविता भाषा में मनुष्य होने की तमीज है, ठीक उसी तरह उसी तर्ज में कहना हो तो कह सकते हैं कि शोध, अनुसंधान समीक्षा आदि मनुष्य में न्याय, विवेक, तटस्थता और तार्किकता के होने की तमीज है। अपनी शक्ति और सीमा से मैं परिचित हूँ, अतः क्षतियों और त्रुटियों के लिए विद्वजनों के समुख क्षमापार्थी हूँ। अंत में छायावाद के सुप्रसिद्ध कवि जयशंकर प्रसाद की निम्नलिखित पंक्तियों के साथ विरमती हूँ-

''यह नीड़ मनोहर कृतियों का
यह विश्व कर्म-रंग स्थल है।
है परम्परा अलग रही यहाँ
ठहरा जिसमें जितना बल है।''

:: इति शुभम् ::